© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 07 | October - December 2018

मानवीय जीवन में कर्मयोग की उपादेयत्ता

[1]श्री जयपाल सिंह राजपूत ,[2]सुनीता रानी

[1]सहायक प्राध्यापक, योग विज्ञान , चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द।
[2]एम.ए. योग द्वितीय वर्ष , चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द।

शोध आलेख सार–
मनुष्य के अन्दर कर्म करने की स्वाभाविक प्रवृति है। कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षण मात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। क्योंकि समस्त मनुष्य मनुदाय प्रकृति जनित गुणों के द्वारा कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है। इस प्रकार जन्म से लेकर मृत्यु तक सभी मनुष्य प्रकृति के गुणों से बाधित होकर कर्म में लीन रहते हैं। कर्म ही मनुष्य के बंधन का कारण होता है। इससे प्रतीत होता है कि जब कर्म बन्धन का कारण होते है और उन्हें किये बिना भी नहीं रहा जा सकता तो मनुष्य सदा बंधन में बंधा रहेगा। किन्तु यह सही नहीं है। क्योंकि जिस प्रकार कर्म बंधन का कारण बनते हैं उसी प्रकार कर्म मुक्ति का कारण होते है।[1] श्रीकृष्ण ने तो कहा है, "गहना कर्मणोगति" अर्थात् कर्म की गति गहन है, रहस्यमय है।[2] प्रथम वे कौन से कर्म है जो मुक्तिदायक होते और दूसरे उन कर्मो के करने की विधि क्या है।" अर्थात कौन से कार्य करने चाहिए और कौन से कर्म नहीं करने चाहिए इसका निर्णय करने के लिए तुम्हारे पास शास्त्र प्रमाण है इस विषय में शास्त्रों की राय जानकर उन्हीं के अनुसार कर्म करने चाहिए।[3] अब बात आती है कि कर्म क्या है कर्म शब्द 'कृ' धातु से बना है इसका सामान्य अर्थ करना व्यापार या हलचल होता है। 'करना' अर्थ में मनुष्य जो कुछ करता है, वही उसका कर्म है। कर्म के अर्थ में मनुष्य जो कुछ भी करता है– खाना–पीना, खेलना, रहना, श्वासोच्छवास करना, हंसना , रोना, बोलना, सुनना, चलना देना–लेना, जागना, मानना, मनन व अध्ययन करना, आज्ञा और निषेध करना, दान देना, यज्ञ–योग करना, खेती–व्यापार और धंधा करना, इच्छा करना, निश्चय करना ये सब दार्शनिक कर्म कहलाते है।[4]

भारतीय दर्शन में कर्म उस शारीरिक चेष्ठा को कहते हैं जिसके साथ मन का संबंध हो अर्थात् मैं यह कार्य कर रहा हूं इसका यह उद्देश्य है इससे मुझे यह लाभ होगा, ऐसी भावना के साथ शरीर तथा इन्द्रियों से जो चेष्ठा की जाती है उसी का नाम कर्म है।[5]

जैमिनी के लिए कर्म ही सब–कुछ है। कर्म से ही कर्माशय बनता है। वही कर्माशय कालान्तर में फल देता है। कर्म क्षणिक है किन्तु कर्माशय तब स्थायी रहता है जब तक फल न ददे। फल देने के पश्चात् वह कर्माशय नी नष्ट हो जाता है।

भूमिका –

सामान्यतया व्यक्ति दो ही कारणों से कर्मो में प्रवृत होते देखे जाते है। ये दो कारण है– लोभ और भय। कुछ पाने का लोभ अथवा खोने का भय व्यक्ति में कर्म की प्रेरणा का संचार करता है। यह पाने का

लोभ, धन, यश, वैभव, श्रेय, स्वर्ग किसी का भी हो सकता है। इसी प्रकार तिरस्कार पद प्रतिष्ठा छीनने दण्डित होने से भयभीत होकर कर्मो में प्रवृति देखने को मिलती है। लेकिन यह कर्म की अपूर्णता है। दूसरे शब्दों में यह कर्म की निम्न अवस्था है। गीता में कहा गया है– "प्रकृति के गुणों से मोहित हुए पुरूष गुण और कर्मो में आस्कत होते है।"[8]

मनुष्य का कर्म में अधिकार है, उसके फल में नहीं। प्रत्येक कर्म का फल अवश्य होता है जिसे मनुष्य को भोगना ही पड़ता है। उसे भोगने के लिए ही उसका जन्म ओर पुनर्जन्म होता है। कर्मो का कारण शरीर नहीं बल्कि मन है। कर्म मन का स्वभाव है तथा कर्म ओर मन अभिन्न हैं। मन की स्पन्दन शक्ति से ही कर्म होते हैं मन का यह स्पन्दन जब वासनात्मक होता है। तो ऐसे कर्मो का फल अवश्य होता है। वासना रहित कर्म फल नहीं देते। जिस प्रकार गुरू बिना गुण के नहीं रह सकता। जैसे अग्नि से उष्णता बर्फ से शीतलता भिन्न नहीं है वैसे ही मन के कर्म भिन्न नहीं है। कर्मफलों का भोग अज्ञानी जीव को ही करना पड़ता है क्योंकि उसके कर्मो का सार वासना है।[9] ये वासनायें अनादिकालीन हैं। पिछले अनादिकाल के बहुत जन्मों की ये वासनायें निरन्तर प्रवहमान रहती है। अतः प्राणी जब मनुष्य शरीर को छोड़कर पशु शरीर में जाता है तो पिछले पशु शरीर में अनुभूत भोगजन्य वासना से वर्तमान पशु आदि शरीर में तद्नुसार भोग होता है।[10] वासना रहित होकर किये गये कर्मो का फल नहीं होता इसलिए आत्मा ज्ञानी इनसे युक्त रहता है क्योंकि वह वासना रहित होता है। जिस प्रकार बन्ध्या के सन्तान नहीं होती इसी प्रकार मन वासन रहित होने से बन्ध्या हो जाता है। फिर वह सन्तान रूपी फल नहीं दे सकता। अज्ञान के कारण ही संकल्प का उदय होता है तथा संकल्प से ही वासना का जन्म होता है इसलिए मन का संकल्प रहित हो जाना ही कर्म बंधन का कारण है। ज्ञान प्राप्ति पर संकल्प रहित हो जाने से वह कर्म करता हुआ भी उसके बन्धन से मुक्त रहता है।[11]

फल प्राप्ति की इच्छा से जो भी कर्म किया जाता है उसका फल अवश्य होता है तथा उसका भोग भी उसे भोगना पड़ता है। अंहभाव के कारण मनुष्य अपने को कर्ता मानता है। इसलिए वह कर्म फलों का भोक्ता भी हेा जाता है। यही कर्म का नियम है। कर्म करने वाला शरीर नहीं बल्कि मन है। जो शरीर की क्रियाओं का त्याग कर मन से वासना का त्याग नहीं करते वे कर्म बन्धन से मुक्त होता है। वे कर्म रहते हुए भी उनके फलों से मुक्त रहते हैं।[12]

विभिन्न ग्रन्थों में कर्म के प्रकारों का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार हैं–

कर्म के प्रकार – वैदिक ग्रन्थों में कर्म के दो प्रकार बताये गये हैं–

क) विहित कर्म ख) निषिद्ध कर्म

क) विहित कर्म– वह कार्य जो करने योग्य है जिसमें अच्छाईयाँ निहित है। इसके चार भेद बताये गये हैं।

क) नित्य कर्म – वह कार्य जो नित्यप्रति अनुष्ठान के रूप में किये जाते हैं। वह नित्य कर्म हैं। जैसे दिनचर्या के सारे कार्य।

ख) नैमितिक कर्म– किसी उद्देष्य के लिए किये गये कर्म को नैमितिक कर्म कहते हैं। जैसे जन्मदिन, दाह–संस्कार, मुडंन संस्कार आदि कर्म कार्य।

ग) काम्य कर्म– वह कर्म जो किसी कामना या इच्छा की पूर्ति के लिये जाये वह काम्य कर्म कहलाता है।

घ) प्रायश्चित कर्म– वह कर्म जो किसी पाप कर्म के बदले किया जाये या गलत कार्यो के परिणाम से मुक्ति पाने के लिएकिया जाये उसे प्रायश्चित कर्म कहते हैं।

ड) निषिद्ध कर्म– जिस कार्य को नहीं करना चाहिये। निषिद्ध कर्म को दुष्कृत या पाप कर्म कहते हैं। वैसे कर्म जो शास्त्रों के अनुसार अनुचित हो उसे निषिद्ध कर्म कहते हैं।

उपनिषद् में तीन प्रकार के कर्म बताये गये हैं–

1) संचित कर्म– वह कर्म जो हमारे पूर्व जन्मों की क्रिया– कलापों के द्वारा संचित रहते हैं इक्टठे रहे हैं वह संचित कर्म कहलाते हैं।

2) क्रियमाण कर्म– वह कर्म जिसके द्वारा हम अपने जीवन क्रम को चलाते रहते हैं, वह क्रियामाण कर्म है।

3) प्रारब्ध कर्म– संचित कर्म का परिणाम प्रारब्ध कर्म है। प्रारब्ध यानि पिछले जन्म के संस्कार जो बलवान बन कर सामने आते हैं, उसे ही प्रारब्ध कर्म कहते हैं।[13]

पांतजल योग सूत्र में कर्म के प्रकार–

पातंजल योगसूत्र में कर्मो को चार वर्गो में रखा–

1) शुक्ल कर्म (पुण्य कर्म) 2) कृष्ण कर्म (पाप कर्म) 3) शुक्ल –कृष्ण कर्म (पुण्य–पाप मिश्रित कर्म) 4) अशुक्ल –अकृष्ण (न पुण्य न पाप कर्म)।

जिन कर्मो से अपना या पराया किसी का अहित नहीं होता, अपितु हित होता है, वह कर्म शुक्ल या पुण कर्म कहलाते हैं। अन्यों को अहित करने वाले कर्म कृष्ण कर्म या पाप कर्म कहलाते हैं। शुभ व अशुभ मिश्रित कर्म शुक्ल कृष्ण कर्म के अन्तर्गत रखे गये हैं। साधारणतया सामान्य व्यक्ति के कर्म शुक्ल–कृष्ण प्रकार के ही होते हैं। जो कर्म कर्मफल की आशा से रहित होकर किये जाते है, उन्हें अशुक्ल–अकृष्ण कहते हैं। गीता में इन्हें ही निष्काम की संज्ञा दी गई है।[14]

गीता में तीन प्रकार के कर्म बताये गए हैं–

1) कर्म– कर्म यानि शास्त्रों में वर्णित कर्मो को करना। योग में आगे बढ़ने के लिए यही कर्म किये जाते हैं।

2) अकर्म– इसमें हर तरह के कर्म आते हैं जो अनासक्त भाव से किया जाये चाहे वह शास्त्र के विरूद्ध ही क्यों न हो।

3) विकर्म– इसे पाप कर्म कहा गया है।[15]

इस प्रकार से कर्मो के इन विभिन्न प्रकार के रूपों को पहचाने के बाद गृहस्थ में रहते हुए भी प्रत्येक मनुष्य कर्मयोग का साधक हो सकता है और फल की इच्छा को त्याग कर भी कर्म करता हुआ भी मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।

महात्मा गांधी कहा करते थे कि –"सभी मार्गो में कर्मयोगी का मार्ग श्रेष्ठ मार्ग है" यह संसारी पुरूष के लिए उचित और सरल मार्ग है। वैराग्य भाव को पुष्ट करने वाले तत्वों की भावना करने से निष्कलुष हुआ चित सन्यास योग के मार्ग पर निर्बोध गति से चलता है। सन्यास योगी को केवल एकाग्रसित उन्हीं योगीपयोगी तत्वों का सोते जागते, चलते, फिरते, उठते बैठते प्रत्येक क्षण, मन में चिंतन करना चाहिए। [16]

श्रीमद्भगवद् गीता (3/5)में कहा गया है कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षण मात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकताक्योंकि समस्त मनुष्य समुदाय प्रकृति जनित गुणों के द्वारा कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है।

कर्म करना जीवन का अनिवार्य नियम है। यह भी शाश्वत सत्य है कि कर्म का फल अवश्य ही मिलता है। परन्तु निश्चयात्मक रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि अमुक कर्म का, अमुक समय तक, अमुक प्रकार का फल प्राप्त हो ही जाएगा। कर्म की महता को देखते हुए इसकी गणना योग में की गयी है। जैसे योग का अर्थ ही बताया गया है– समर्षण, विलय, विसर्जन। कर्म तभी कर्मयोग बनता है जब उसमें कर्ता का घनिष्ठ तादात्मय सम्मिलित हो। घनिष्ठता तभी हो पाती हैं, जब कर्ता तल्लीनतापूर्वक कार्य में संलग्न हो अर्थात, कार्य के प्रति उसकी गहरी अभिरूचि हो। यह अभिरूचि ही कर्म में कुशलता लाती है तथा इस प्रकार से कहा गया है कि –

समबुद्धियुक्त पुरूष पुण्य और पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इससे तू समत्वम योग में लग जा, यह समत्व रूप ही कर्मो की कुशलता है अर्थात कर्मबन्धन से छूटने का उपाय है।

यही वह स्थिति है, जिसमें योग का आनंद और क्रिया का सत्परिणाम दोनों साथ–साथ प्राप्त होते है। जो कर्म मानव को जन्म–मरण के भवबन्धन से बाहर निकालने में समर्थ बन जाते हैं, इसी के द्वारा–सच्चाई के मार्ग पर, नीति और धर्म प्रतिष्ठा के मार्ग पर वीरोचित ढंग से बढ़ते हुए अपना इहलोक तथा परलोक को अपने शुद्ध अंहभाव का विकास करते हुए धीरे–धीरे परमात्मा में मिला देना। कर्मयोग का पूरा नाम निष्काय कर्मयोग होता है, इसके द्वारा फल की आसक्ति छोड़कर कर्म करना ही श्रेष्ठमार्ग है ।2/50

निष्कर्ष–

इस प्रकार हम देखते है कि मानवीय जीवन विश्व की प्राचीनतम संस्कृति भारतीय संस्कृति की सतत् प्रवाहमान निर्झणी के ज्ञान–विज्ञान की अनेकों धाराएं है, जो समस्त विश्व मानवता के कल्याण हेतू सनातन प्रवाहित होती रहेगे, परन्तु इन समस्त विधाओं में सर्वाधिक व्यावहारिक एंव सरल महत्वपूर्ण विधा

कर्मयोग साधना ही रही है। कर्म में और उनके फलों में आसक्ति से व्यक्ति कर्मो के बंधन में बंधता है। कार्य में बाधा उत्पन्न होने पर उसे कष्ट होता है क्योंकि उसके फलों में आसक्ति है परन्तु साधक जब कर्म फलों की आसक्ति त्याग देता है तो वह आसक्ति रहित कर्म हो जाता है जाता है। कर्मयोगी को सफलता और असफलता से कोई लगाव नहीं रहता है। कामना से रहित होकर कर्म करने से मन की कामना शून्य हो जाता है। जिसके परिणाम स्वरूप संसार के प्रति आसक्ति नष्ट हो जाती है तथा तब कर्म संसकारों की उत्पति नहीं करते, जिसके परिणामस्वरूप मोक्ष की प्राप्ति होती है। [17]

संदर्भ सूची–

1) योगमहाविज्ञान D/ कामाख्या कुमार रणधीर प्रकाशन रेलवे रोड हरिद्वार 249401 वर्ष 2017
2) कर्मयोग– साधना–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती प्रकाशक पत्रालयः शिवानन्दनगर –249192 जिलाः टिहरी गढ़वाल, उतरांचल हिमालय, भारत (वर्ष 2007) Page 41
3) योगमहाविज्ञान D/ कामाख्या कुमार गीता 17 / 24 रणधीर प्रकाशन रेलवे रोड हरिद्वार 249401 वर्ष 2017
4) मानव चेतना– डॉ0 ईश्वर भारद्वाज IDBN 978-93-80190-64-8 संस्करण वर्ष–2017
5) प्रो0 विजयपाल शास्त्री– पातजल योग दर्शन गुरूकुल कागड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उतरांचल) प्रकाशन 249404 संस्करण वर्ष–2006–2016
6) कर्मयोग साधना–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती प्रकाशक पत्रालयः शिवानन्द नगर 249192 जिलाः टिहरी गढ़वाल, उतरांचल हिमालय, भातर वर्ष 2007 Page 9
7) प्रो0 विजयपाल शास्त्री– पातजल योग दर्शन Page 26
8) मानव चेतना – ईश्वर भारद्वाज Page 148-149
9) योग वशिष्ठ के सिद्वांत– नन्दलाल दशोरा प्रकाशक रणधीर प्रकाशन रेलवे रोड़ (हरिद्वार) संस्करण सन् 2017
10) प्रो0 विजयपाल शास्त्री– पातजल योग दर्शन Page 35
11) योग वशिष्ठ के सिद्वांत– नन्दलाल दशोरा
12) योग वशिष्ठ के सिद्वांत– नन्दलाल दशोरा
13) योग और योगी– डॉ0 अनुजा रावत,–प्रकाशक सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस N-3/25 मोहन गार्डन, उत्तम नगर नई दिल्ली– 110059, संस्करण 2017 ISBN: 978-93-83754-26-7
14) मानव चेतना – ईश्वर भारद्वाज Page 151
15) योगमहाविज्ञान D/ कामाख्या कुमार गीता प्रकाशन वर्ष–2017
16) योग और योगी– डॉ0 अनुजा रावत Page-118
न हि कश्चित् क्षणमपि जातुनिष्ठत्य कर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकतिजैर्गुवैः।। Page 118
बुद्धियुक्तों जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्याद्योगाय युज्यसव योगः कर्मसु कौशलम्। Page 119
17) योग और योगी – डॉ अनुजा रावत Page 124